International Journal of Arts, Humanities and Social Studies

ISSN Print: 2664-8652
ISSN Online: 2664-8660
Impact Factor: RJIF 8
IJAHSS 2023; 5(2): 09-12
www.socialstudiesjournal.com
Received: 10-04-2023
Accepted: 13-05-2023

अमित कुमार सोनी
शोधार्थी, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा, राजस्थान, भारत

डॉ. सीमा चतुर्वेदी
आचार्य, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
अमित कुमार सोनी
शोधार्थी, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा, राजस्थान, भारत

बारां क्षेत्र के भूमिज मंदिर स्थापत्य

अमित कुमार सोनी, डॉ. सीमा चतुर्वेदी

DOI: https://doi.org/10.33545/26648652.2023.v5.i2a.58

सारांश
विश्व के निर्माण से लेकर मनुष्य के जन्म और मनुष्य के द्वारा सम्पादित विभिन्न कार्यों एवं जीवन दर्शन सम्बन्धी विवेचना वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) से प्राप्त होती है। इन वेदों में कला से सम्बंधित विस्तृत जानकारी उपलब्ध है। 'वेद' का शाब्दिक अर्थ है– 'ज्ञान'। आर्यों का प्राचीनतम ज्ञान इन्हीं वेदों में सुरक्षित है। 'ऋग्वेद' प्राचीनतम वेद है। जिसमें देवताओं की प्रार्थना, स्तुतियों और देवलोक में उनकी स्थित का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में जल, वायु, सौर, मानस और हवा द्वारा चिकित्सा की जानकारी मिलती है। 'यजुर्वेद' में यज्ञ के विधि–विधान व नियमों का वर्णन है। जो पूजा विधि को दर्शाता है। वही 'सामवेद' में पूजनीय देवताओं के आवाहन के लिए यज्ञ, अनुष्ठान और हवन के समय ग्रन्थ के मंत्र संगीतमय गाये जाते है। 'अथर्ववेद' से आयुर्वेद में विश्वास किया जाने लगा था जिसमें अनेक प्रकार की चिकित्सा पद्धतियो का वर्णन किया गया है।
प्रागैतिहासिक काल से लेकर वर्तमान काल तक मनुष्य ने देवी–देवताओं की आराधना व पूजा–पाठ किया है जो एक विशिष्ट स्थान पर की जाती थी। यही स्थान प्राचीन वेदों में देवालय, देवल, मंदिर, पूजा–ग्रह, कोविल, प्रासाद या क्षेत्रम् के नाम से जाना जाता रहा है। भारत में प्रासाद या मंदिर का निर्माण कहाँ से हुआ इस का कोई सटीक प्रमाण नहीं मिलता परन्तु मंदिर स्थापत्य के विकास क्रम को जरूर देखा जा सकता है। प्रारंभ में प्रासाद का निर्माण एक पूजन स्थल के रूप में हुआ जिसमें प्रतीक चिन्हों को एक स्थान पर बनाया गया। वैदिक काल में अग्नि, लकड़ी के लाढ व इन्द्र, वायु, जल की पूजा की जाती थी। वैदिक कला में ही पूजा स्थल ऊँचे चबूतरे पर घास–फूस के द्वारा गुम्बद, चार दीवार से एक चोकोरनुमा कुटीर का निर्माण किया गया। समय के परिवर्तन के साथ पूजा स्थल के आकारों में आवश्यकता के अनुरूप विभिन्न प्रकार के बदलाव किये जाते रहे। जैसे– शिखर, गवाक्ष, गर्भग्रह, अन्तराल, महामंडप, मंडप, अर्धमंड़प (प्रवेश कक्ष), भोगमंडप, नटमंडप, गोपुरम आदि।
मंदिरों (पूजा स्थल) का निर्माण भारतवर्ष में भिन्न–भिन्न धर्मानुयायीयों के द्वारा किया गया। मंदिर स्थापत्य के निर्माण में भारत में तीन प्रमुख शैलियों है।
1. नागर शैली
2. द्रविड़ शैली
3. वेसर शैली

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इन तीन प्रमुख शैलियों की कई उप शैली देखि जा सकती है। उत्तर भारत में नागर शैली की उप शैली– लैटिना (रेखा प्रसाद), भूमिज, फामसाना, वल्लभी आदि प्राप्त होती है। जो कक्ष के अनुरूप तो सामान होती है परन्तु शिखर के द्वारा इन शैलियों को अलग–अलग देखा जा सकता है। उसी प्रकार राजस्थान जो उत्तरी भारतीय क्षेत्र में आता है यहाँ नागर शैली के मंदिर प्राप्त होते है। राजस्थान में मंदिरों स्थापत्य के विकास क्रम में हाड़ोती के बारां क्षेत्र के मंदिरों का भी विशेष महत्त्व है। जो नागर शैली की एक उप शाखा भूमिज शैली की मंदिर स्थापत्य के रूप में बारां क्षेत्र में बिखरी हुई है।

कूटशब्द : नागर शैली, द्रविड़ शैली, वेसर शैली, शिखर, गवाक्ष, गर्भग्रह, अन्तराल, महामंडप, मंडप, अर्धमंड़प

प्रस्तावना
प्रागैतिहासिक काल से ही मनुष्य ने इस धरा पर प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिए आकृति विहीन देवी – देवताओं की पूजा–अर्चना गुफाओं की दीवारों पर प्रतिक चिन्हों के रूप में आरम्भ की। इन प्रतिक चिन्हों में वह स्वास्तिक, सूर्य, चन्द्र, पशु आदि की पूजा करता था जिसके प्रमाण आज भी कई गुफाओं में देखे जा सकते है। वैदिक काल में मनुष्य ने अग्नि व इन्द्र आदि देवताओं को एक उचित स्थान (कक्ष) पर स्थापित कर पूजा–अर्चना प्रारंभ की। समय के परिवर्तन के साथ यह कक्ष प्रासाद या मंदिर का स्वरूप प्राप्त करता है। मंदिर स्थापत्य का निर्माण पुरे भारत वर्ष में यथावत रहता है। मंदिर निर्माण का एक मात्र उद्देश्य उसमे देव प्रतिमा की स्थापना रहा है प्रतिमा स्थापना के बिना मंदिर निष्प्राण है।

राजस्थान के हाडौती क्षेत्र का प्रान्त जो कि कोटा से अलग किया गया था हरी भरी वादियों और पत्तियों से घिरा बारां क्षेत्र पहाड़ियों के बीच स्थित है। बारां क्षेत्र में प्राचीन युग के अवशेष यंत्र–तंत्र बिखरे पड़े है।

प्राचीन समय में यह क्षेत्र विष्णु के वराह अवतार के मंदिर से घिरा हुआ था। विष्णु के वराह अवतार के कारण इस क्षेत्र का नाम वाराह– बारां पड़ा। बारां के नामकरण को लेकर लोगों की कई धाराणाएं हैं। कुछ लोगों की धारणाएं है की यह 12 गांवों से मिलकर बना है इसलिए इसका नाम बारां पड़ा। इस क्षेत्र का इतिहास 14वी. शताब्दी का माना जाता है। जब सोलंकी व परमार शासकों ने यहाँ शासन किया था। भारत की स्वतंत्रता के बाद 1949 में राजस्थान के पुनर्गठन के समय बारां, कोटा का मुख्य आंचलिक कार्यक्षेत्र बना तथा 1991 में जिले के रूप में स्थापित हुआ। बारां की प्राकृतिक सुन्दरता, शक्तिशाली किले, भिन्न–भिन्न प्रकार के मंदिर समूह दर्शनीय है।

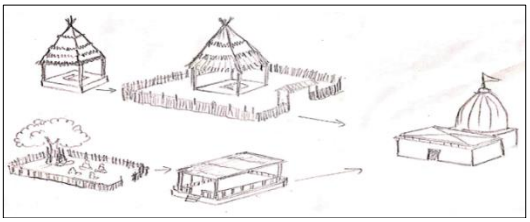

बारां जिला शक्ति शौर्य बलिदान और भक्ति का हमेशा ही मुख्य केंद्र रहा है। यहाँ की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में धर्म प्रमुख रहा है बारां अपनी गौरवमयी परम्पराओं के लिए विख्यात रहा है। वीरता और शौर्य की रोमांचक गाथाओं के लिए बारां जिले के दुर्ग प्रसिद्ध रहे है। बारां क्षेत्र में पूरा सम्पदा की दृष्टि से मंदिरों स्थापत्य एवं मूर्ति शिल्प का महत्वपूर्ण स्थान है। साथ ही छोटे–बड़े कई मंदिर स्थापत्य यहाँ विद्यमान है। इसमे से बारां, अटरू, अंता आदि मंदिर स्थापत्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते है। वैसे तो राजस्थान उत्तरी भारतीय नागर शैली के मंदिरों की श्रेणी में आता है। परन्तु राजस्थान के हाड़ौती संभाग के बारां क्षेत्र में उत्तर भारतीय नागर शैली की एक उप शैली के दर्शन होते है। बारां के सभी मंदिरों को अगर ध्यान से देखे तो यहाँ के सभी मंदिर नागर शैली की उप शैली ''भूमिज शैली'' के है।

भूमिज शैली के मंदिर की स्थापत्य कला

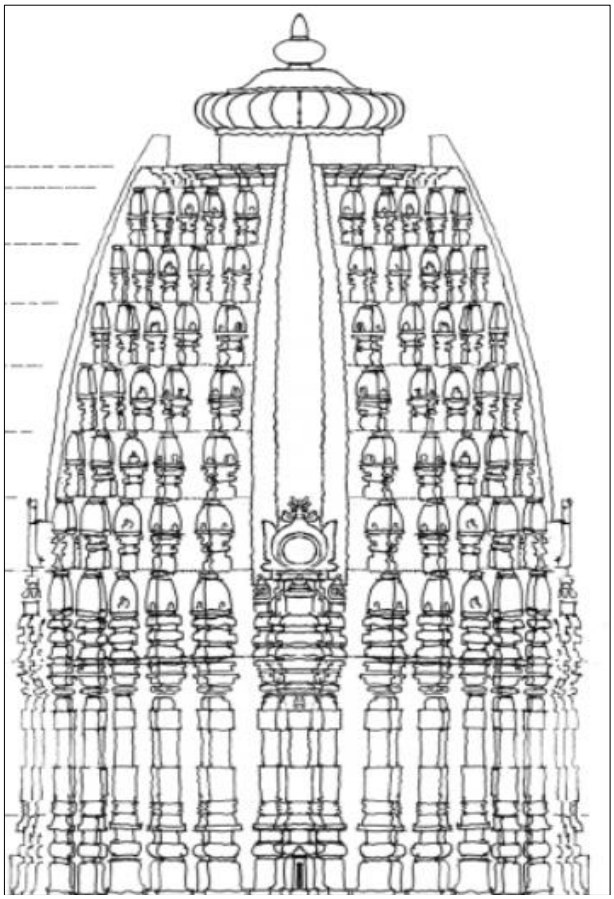

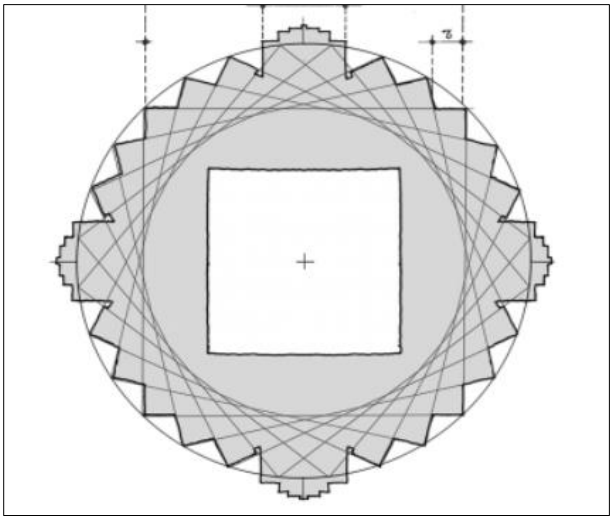

भूमिजा उत्तर भारतीय मंदिर वास्तुकला की एक किस्म है, जो नागर शैली की उप शैली है। जो कि गर्भगृह के शीर्ष पर शिखर (अधिरचना) के निर्माण के लिए घूर्णन वर्ग–वृत्त सिद्धांत पर आधारित है। भूमिजा एक संस्कृत शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है ''जमीन, पृथ्वी, भूमि से''। वास्तुकला के संदर्भ में, भूमिजा शैली की चर्चा समरंगन सूत्रधारा के अध्याय 65 में की गई है भूमिज मंदिरों की चर्चा 12वीं शताब्दी में प्रकाशित वास्तुकला पर एक अन्य हिंदू ग्रंथ अपराजितप्रचा में भी की गई है। इस प्रकार, 11वीं शताब्दी में भूमिजा वास्तुकला का आविष्कार पहले ही हो चुका था। मेट के अनुसार, 1975 में प्रकाशित एक लेख में, ''यह संभावना है कि 9वीं शताब्दी में भूमिजा शैली की खोज की गई थी और 10वीं शताब्दी तक स्थापित हो गई थी।'' परमार वंश के शासन काल के दौरान मध्य भारत के मालवा क्षेत्र (पश्चिम मध्य प्रदेश और दक्षिण पूर्व राजस्थान) में 10वीं शताब्दी में भूमिज शैली के मंदिरों का निर्माण किया गया, इस समय राजस्थान के दक्षिण पूर्वी (कोटा, बूंदी, चितौड़गड़, झालावाड़) क्षेत्र में हिंदू और जैन मंदिरों में पाया जाता है। सबसे प्रारंभिक और सुरुचिपूर्ण उदाहरण मालवा क्षेत्र में और उसके आसपास पाए जाते हैं, लेकिन यह डिजाइन गुजरात, राजस्थान, देक्कन और दक्षिणी और पूर्वी भारत के कुछ प्रमुख हिंदू मंदिर परिसरों में भी पाया जाता है। भूमिजा शैली की पहचान एक वर्गाकार योजना है। जो विभाजित नहीं है, बल्कि इसके केंद्र के चारों ओर घूमती है और इस घुमाव को नियमित अंतराल पर रोक दिया जाता है क्योंकि अधिरचना खड़ी हो जाती है। घुमाव की गति और घुमाव के रुकने के अंतराल को समायोजित करके, कई रचनात्मक विविधताएं लागू की जा सकती हैं। प्रत्येक स्तर को भूमि कहा जाता है। समरांगना सूत्रधारा में भूमिजा वास्तुकला के सोलह रूपों का वर्णन किया गया है। हिंदू ग्रंथों में सामान्य नियम यह है कि भद्रा और सला गर्भगृह (कार्डिनल दिशा में गर्भगृह का वर्ग) के समानांतर रहते हैं, एक ऐसा नियम जो अधिरचना को सौंदर्यपूर्ण अपील देता है और इसे नेत्रहीन रूप से पालन करना आसान बनाता है। साला के फलकों को भी काट कर वृत्त से जोड़ दिया जाता है। वर्ग और वृत्त सिद्धांत का यह एक साथ उपयोग भूमिजा वास्तुकला की विशिष्ट विशेषता है। कुछ शुरुआती मंदिरों ने समय–समय पर रोक और ऊपर की सजावट को छोड़ दिया, जिससे एक अधिरचना सामने आई, जो दूर से सुंदर ढंग से सपाट प्रसाद दिखती है, लेकिन दर्शकों को नजदीकी दूरी पर सावधानीपूर्वक विस्तृत नक्काशी के साथ आश्चर्यचकित करती है। भूमिजा को दो तरीकों में से एक में लागू किया जा सकता है, 1. शिखर के लिए 2. पूरे विमान या मंदिर के लिए। 3. मंदिर वाला दृष्टिकोण भूमिजा को नागर वास्तुकला की उप–श्रेणी देता है, और जब जगती (मंच) या पीठ (जमीन) के साथ एकीकृत किया जाता है, तो यह मंदिर को ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि यह पृथ्वी से बाहर निकल रहा हो।

भूमिजा शैली का सबसे पहला ज्ञात उदाहरण नर्मदा नदी के दक्षिण में सेगांव और खरगोन के बीच उन गांव में एक हिंदू मंदिर समूह के खंडहर हैं। इनमें से आठ भूमिजा शैली के हैं। उदयपुर, मध्य प्रदेश (भोपाल के उत्तर) में 11वीं शताब्दी का नीलकंठेश्वर (उदयेश्वर) मंदिर भूमिजा शैली का सबसे अच्छा संरक्षित और बेहतरीन उदाहरण है।

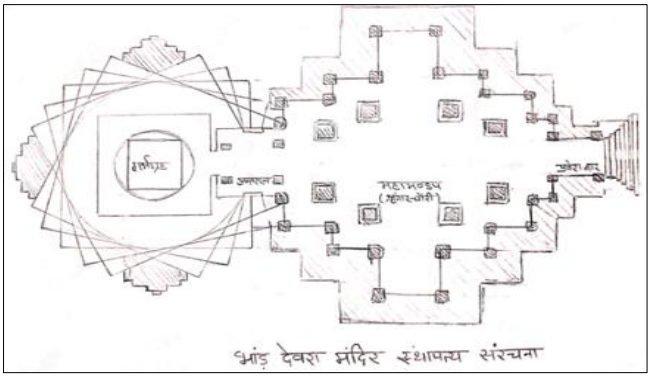

भांड देवरा मंदिर: यह मंदिर हिंदू धर्म के देवता भगवान शिव को समर्पित है। यह मंदिर राजस्थान में बेहद लोकप्रिय है जिसे 'मिनी खजुराहो' के नाम से भी जाना जाता है। भांड देवरा मंदिर रामगढ की पहाड़ियों में एक तालाब के किनारे खूबसूरती के साथ खड़ा हुआ है, इस मंदिर के बारे में कहा जाता है कि इसका निर्माण उल्का द्वारा हुआ है। इस मंदिर का निर्माण 10 वीं शताब्दी में हुआ था। शैववाद की तांत्रिक परंपरा को समर्पित यह मंदिर नागर शैली के मंदिर का एक उल्लेखनीय उदाहरण है। शिलालेखों के अनुसार, यह 10 वीं शताब्दी में मालवा के नाग वंश के राजा मलय वर्मा द्वारा अपने दुश्मनों पर उनकी जीत के स्मारक के रूप में और भगवान शिव के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए एक श्रद्धांजलि के रूप में बनाया गया था, जिसे उन्होंने सम्मान में रखा था। मंदिर का शिखर भूमिज प्रकार का खंडित अवस्था में और आधार संरचना वर्ग सिद्धान्त पर आधारित है। मंदिर के श्रृंगार चौरी (महामंडप) में यक्ष, किन्नर,

किचक, विद्याचार, देवताओं और अप्सनाओं और कामुक जोड़ों की छवियों के साथ 8 विशाल स्तंभ जिनके शीर्ष पर विशाल मंडप निर्मित हैं। तथा मंडप बाहरी किनारों पर कुल 32 छोटे स्तंभ बनाये गये है। सम्पूर्ण मंदिर चार भागो (गर्भग्रह, अन्तराल, महामंडप, प्रवेश द्वार) में निर्मित है।

शिव मंदिर 'बांसथूनी : – यह मंदिर बारां के नेशनल हाईवे 27 के समीप बांसथूनी के गोराजी की सारण पर स्थित है। प्राचीन शिव मंदिर सुंदर कलाकृतियों से निर्मित है। मंदिर के स्तंभों व वास्तु खंडों पर की गई कारीगरी लोगों को आकर्षित करती है। मंदिर के द्वार, शाखाओं पर शिव प्रतिहारों का अंकन है। इस मंदिर के स्तंभों पर विक्रम संवत 1224 का लेख मिलता है। इस मंदिर में 12 अष्टकोणीय स्तंभों युक्त सभामंडलों की छत है। मंदिर की छत पर अद्भुत तरीके से गरदाने बनाए गए हैं, जो देखने पर लोगों को आकर्षित करते हैं। यह शिव मंदिर पश्चिमामिमुख है। यह मंदिर स्थापत्य कला के अनुसार भूमिज शैली का है। मंदिर तल विन्यास में गर्भगृह, अंतराल, सभामंडप एवं मुखमंडप है। वहीं गर्भगृह की दार शाखाओं पर शिव प्रतिहारों का अंकन है। गर्भगृह के प्रवेश पट्ट पर गणेश सप्त मातृकाओं का सुंदर अंकन है। मंदिर के स्तंभों पर कमल पत्त व कीर्तिमुख बने हुए हैं। मंदिर परिसर में कई देवी–देवताओं की प्रतिमाएं भी बनी हुई।

बारां क्षेत्र में भूमिज शैली के मंदिरों की संख्या अधिक है, जो शोधार्थी के लिए एक विषय है। वर्तमान समय में इन सभी मंदिरों को सहेज ने की आवश्यकता है बारां क्षेत्र में 8 तहसीले अन्ता, बारां, अटरू, किशनगंज, छबड़ा, छिपाबड़ोद, मांगरोल, शाहबाद है। इन सभी तहसीलों में भूमिज शैली के मंदिर प्राप्त होते है। जिनमें कालेश्वर महाकाल मंदिर' अटरू, महाकाल मंदिर अटरू, गरगज या गढ़गच मंदिर, अटरू, गडिया मंदिर,अटरू, फुल्देवारा मंदिर या मामा–भांजा मंदिर, नागादेव मंदिर, अटरू, भांड देवरा, रामगढ़, शिव मंदिर कल्मनदा, रामगढ़ माता मंदिर, गुफा मंदिर, शिव मंदिर, बांसथूनी (रामपुरिया), कन्या दह मंदिर, पींजना, श्री जी मंदिर, सहरोद, गुगोर माता का मंदिर, शिव मंदिर, खंडेला, काकुनी गणेशपूरा मंदिर, अकलेरा, शिव मंदिर, शेरगढ़ किले के पास आदि है।

संदर्भ

1. उदय नारायण राय भारतीय कला, 2006
2. महेश चन्द्र जोशी युग–युगीन भारतीय कला,1995
3. रामलाल कँवल प्राचीन मालवा में मंदिर वास्तुकला,1684
4. मिनाक्षी कासलीवाल 'भारती' भारतीय वास्तुकला व मूर्तिकला का इतिहास, 2013
5. डॉ वासुदेव उपाध्याय प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर, 2008